



अक्का महादेवी के वचनों में भक्ति का दर्शन : अनुभव, प्रेम, वैराग्य और आत्म-विलय

*मेधा

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सत्यवती कॉलेज (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय

सार

भारतीय भक्ति परंपरा के अध्ययन में अक्का महादेवी को अक्सर स्त्री-अस्मिता, सामाजिक प्रतिरोध अथवा मध्यकालीन स्त्री-संत परंपरा के संदर्भ में पढ़ा गया है; किंतु उनकी काव्यात्मक वाणी का अधिक मूलभूत प्रश्न इससे आगे जाता है—ईश्वर क्या है, उसे कैसे जाना जा सकता है, भक्त और परम सत्य के बीच संबंध किस प्रकार निर्मित होता है, और मनुष्य अपने सीमित आत्मबोध से मुक्ति तक कैसे पहुँचता है? बारहवीं शताब्दी की कन्नड़ वचन-परंपरा से जुड़ी अक्का महादेवी की भक्ति मूलतः अनुभवपरक, अंतर्मुखी और रूपांतरणकारी है। उनके वचनों में चन्नमल्लिकार्जुन एक साथ प्रियतम, पति, परम सत्य और सर्वव्यापक सत्ता के रूप में उपस्थित होते हैं। इस प्रकार उनकी भक्ति व्यक्तिगत प्रेम और सार्वभौमिक आध्यात्मिकता के बीच एक गतिशील सेतु निर्मित करती है।¹

यह लेख अक्का महादेवी की भक्ति-दृष्टि को चार परस्पर संबद्ध अवधारणात्मक आयामों में पढ़ता है: (1) अनुभव, आत्मबोध और अंतःस्थित परम सत्य; (2) प्रेम और विरह के माध्यम से भक्त-ईश्वर संबंध; (3) वैराग्य, देह-अतिक्रमण और अंतःपूजा; तथा (4) आत्म-विलय, सर्वात्मदृष्टि और मुक्ति। लेख का सैद्धांतिक आधार Karen Pechilis की *devotional subjectivity* की अवधारणा है, जिसके अनुसार महिला भक्त-कविता को केवल उनकी जीवनी या बाहरी सामाजिक परिस्थितियों से नहीं, बल्कि उनके द्वारा निर्मित आध्यात्मिक वाणी और अनुभव की प्रामाणिकता से समझना चाहिए।² A. K. Ramanujan का *Speaking of Siva* और Vinaya Chaitanya का *Songs for Śiva* इस अध्ययन के प्रमुख पाठ-स्रोत हैं। लेख का केंद्रीय तर्क है कि अक्का के लिए भक्ति किसी बाहरी धार्मिक आचार का पर्याय नहीं है। भक्ति अनुभव से ज्ञान, ज्ञान से प्रेम, प्रेम से विरह, विरह से वैराग्य, वैराग्य से आत्मबोध और आत्मबोध से आत्म-विलय की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में देह का निषेध नहीं, उसकी अंतिमता का निषेध है; संसार का नकार नहीं, उसकी सीमाओं की पहचान है; और समर्पण आत्म-विलोपन नहीं, परम सत्य में अपनी वास्तविक पहचान की खोज है। इस अर्थ में अक्का महादेवी भारतीय ज्ञान-परंपरा की अनुभवात्मक ज्ञानमीमांसा, भक्ति-दर्शन और जीवन-दर्शन को एकीकृत करने वाली महत्वपूर्ण चिंतक-कवयित्री हैं।

बीज-शब्द: अक्का महादेवी, वचन, वीरशैव परंपरा, भक्ति-दर्शन, *devotional subjectivity*, अनुभव, चन्नमल्लिकार्जुन, प्रेम, विरह, वैराग्य, आत्मबोध, आत्म-विलय, मुक्ति, भारतीय भक्ति-परंपरा।

Received: 06/01/2026
 Accepted: 23/02/2026
 Published: 28/02/2026

*Corresponding Author:
 मेधा

Email: medha.hindi@satyawatie.du.ac.in

प्रस्तावना

भारतीय भक्ति परंपरा के बारे में सामान्यतः यह कहा जाता है कि उसने ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग को सरल बनाया और धार्मिक अनुभव को लोकभाषाओं तक

पहुँचाया। यह कथन सही होते हुए भी भक्ति की वास्तविक दार्शनिक शक्ति को पूरी तरह सामने नहीं लाता। भक्ति ने केवल उपासना की भाषा नहीं बदली; उसने धार्मिक ज्ञान की प्रामाणिकता के प्रश्न को भी बदला। यदि सत्य केवल शास्त्र में नहीं, अनुभव में

भी उपलब्ध है, तो साधक स्वयं आध्यात्मिक ज्ञान का सक्रिय सहभागी बन जाता है। कन्नड़ वचन परंपरा का महत्त्व इसी संदर्भ में समझा जाना चाहिए। रामानुजन के अनुसार वीरशैव वचन-परंपरा अनुभव —प्रत्यक्ष अनुभव—पर विशेष बल देती है और ईश्वर के साथ ऐसे संबंध की कल्पना करती है जो मध्यस्थता से मुक्त और व्यक्तिगत हो। वे इसे ‘अमध्यस्थ — दृष्टि’ (unmediated vision) की खोज के रूप में प्रस्तुत करते हैं।³ यही कारण है कि अक्का महादेवी का अध्ययन केवल जीवन-चरित का अध्ययन नहीं होना चाहिए। उनकी जीवनी के अनेक प्रसंग बाद की संत-परंपराओं से निर्मित हुए हैं। रामानुजन स्वयं उनके जीवन के संदर्भ में सावधानी बरतते हैं और उनके कथित विवाह को निश्चित इतिहास के रूप में नहीं, संभावना के रूप में रखते हैं।⁴ इसलिए अक्का के जीवन की व्याख्या करते समय उनके वचनों को प्राथमिक प्रमाण और जीवनी-आख्यानों को द्वितीयक सांस्कृतिक स्मृति मानना अधिक उपयुक्त है। Karen Pechilis का अध्ययन इस पद्धति को सैद्धांतिक आधार देता है। वे स्त्री भक्तों के अध्ययन में पारंपरिक जीवनीके प्रभुत्व की आलोचना करती हैं और यह प्रस्तावित करती हैं कि उनकी कविता, स्वर, अभिव्यक्ति और दैहिक अनुभव (poetry, voice, utterance और embodied experience) को प्राथमिकता देते हुए भक्तिपरक वैयक्तिक चेतना (devotional subjectivity) की संरचना को समझा जाए।⁵ अतः अक्का महादेवी को सबसे पहले ‘स्त्री’ के रूप में नहीं, ‘भक्त-स्वर’ के रूप में सुनना आवश्यक है। स्त्री-अनुभव उनके काव्य में महत्त्वपूर्ण है, परंतु उनका अंतिम प्रश्न है—परम को कैसे जिया जाए?

अनुभव, आत्मबोध और अंतःस्थित परम सत्य : भक्ति का ज्ञानमीमांसात्मक आधार

अक्का महादेवी की भक्ति का पहला और सबसे गहरा आधार है—परम सत्य की अंतःस्थिति और उसकी अनुभूति।

उनका एक प्रसिद्ध वचन है -

“धरती में छिपे खजाने की तरह,

फल में छिपे स्वाद की तरह,
पत्थर में छिपे सोने की तरह,
बीज में छिपे तेल की तरह,
वह परम सत्य हृदय में छिपा है”⁶

यह वचन रामानुजन के महादेविका 2 (*Mahadeviyakka 2*) के रूप में आता है; 1973 संस्करण का अक्का खंड p. 111 से आरंभ होता है और इस वचन का scholarly cross-reference p. 115 से मिलता है।⁷

इस पद का दार्शनिक अर्थ अत्यंत महत्त्वपूर्ण है— खजाना मिट्टी के बाहर से नहीं आता; वह उसी धरती में निहित है। स्वाद फल से अलग नहीं है; तेल बीज के भीतर है। इसी प्रकार परम सत्य भक्त से बाहर स्थित कोई वस्तु नहीं है। वह पहले से ही अस्तित्व के भीतर है। इस बिंदु पर अक्का की भक्ति उपासना से अनुभव की ओर चली जाती है। यदि ईश्वर बाहर से प्राप्त होने वाला कोई पदार्थ है, तो साधना प्राप्ति की प्रक्रिया है। यदि ईश्वर भीतर निहित है, तो साधना आवरण हटाने की प्रक्रिया है। इसी कारण अक्का के यहाँ भक्ति स्वयं-ज्ञान से अलग नहीं है। उनका वचन 50 इस अंतर्संबंध को और स्पष्ट करता है:

“जब मैं स्वयं को नहीं जानती थी,
तुम कहाँ थे?
जैसे सोने में उसका रंग,
वैसे तुम मेरे भीतर थे”⁸

यहाँ ‘ईश्वर कहाँ था?’ का उत्तर स्थान नहीं, अस्तित्व है। ईश्वर कहीं से आया नहीं; वह भीतर था। समस्या ईश्वर की अनुपस्थिति नहीं, आत्म-अज्ञान है। अक्का का भक्ति-दर्शन इस अर्थ में एक प्रकार की अनुभवात्मक ज्ञानमीमांसा प्रस्तुत करता है। ज्ञान केवल बाहरी वस्तुओं का ज्ञान नहीं; स्वयं के वास्तविक स्वरूप की पहचान भी है। इसी कारण उनके वचनों में ‘जानना’ और ‘पाना’ धीरे-धीरे एक-दूसरे में रूपांतरित होने लगते हैं। यहाँ अनुभव की

अवधारणा निर्णायक है। रामानुजन वचन-परंपरा में धार्मिक अनुभव को प्रत्यक्ष, अप्रतिबंधित और मध्यस्थता से मुक्त दृष्टि के रूप में रेखांकित करते हैं।⁹ अक्का के लिए यह प्रत्यक्षता किसी बौद्धिक तर्क से उत्पन्न नहीं होती; वह जीवन को साधना में रूपांतरित करने से उत्पन्न होती है। अतः उनकी भक्ति का पहला सूत्र है: ईश्वर को मानना पर्याप्त नहीं; उसे अनुभव करना आवश्यक है। यहीं से भक्ति ज्ञान का मार्ग बनती है।

प्रेम और विरह : व्यक्तिगत ईश्वर से परम सत्य तक की आध्यात्मिक यात्रा

अक्का महादेवी की भक्ति का दूसरा बड़ा आयाम प्रेम है। चन्नमल्लिकार्जुन उनके लिए केवल आराध्य नहीं हैं; वे प्रियतम हैं। रामानुजन भी उनके वचनों की विशिष्टता को इस बात में देखते हैं कि अक्का शिव को प्रेमी और पति दोनों रूपों में संबोधित करती हैं।¹⁰ इस संबोधन का अर्थ केवल लौकिक प्रेम का आध्यात्मिकीकरण नहीं है। यहाँ प्रेम भक्त और परम सत्य के बीच एक ऐसा अंतरंग संबंध निर्मित करता है, जिसमें ईश्वर बौद्धिक अवधारणा नहीं, जीवित उपस्थिति बन जाते हैं। अक्का का वचन 79 इस प्रेम की तीव्रता को दर्शाता है:

“दिन के चारों प्रहर मैं तुम्हारे लिए दुखती हूँ,
रात के चारों प्रहर तुम्हारे लिए व्याकुल हूँ;
दिन-रात तुम्हारे लिए खोई हुई हूँ।
तुम्हारा प्रेम मेरे भीतर अंकुरित हुआ
और मैंने भूख, प्यास और नींद तक भूल दी।”¹¹

यहाँ प्रेम शारीरिक या मनोवैज्ञानिक आवेश से आगे जाकर अस्तित्वगत भूख बन जाता है। भक्त के जीवन का केंद्र बदल जाता है। यहाँ से विरह का प्रश्न उठता है। यदि परम सत्य भीतर है, तो फिर उसकी खोज क्यों? यदि वह प्रियतम है, तो उसके लिए इतनी व्याकुलता क्यों? यहीं अक्का के काव्य का सबसे गहरा विरोधाभास सामने आता है—उपस्थिति और अनुपस्थिति का एक साथ अनुभव। विरह का अर्थ यह नहीं कि ईश्वर अनुपस्थित है; इसका अर्थ है कि साधक अभी उस उपस्थिति को पूर्णतः जी नहीं पा रहा। इसलिए विरह अक्का की भक्ति में साधना का

उपकरण है। विरह चेतना को तीव्र करता है। स्मरण को निरंतर बनाता है। मन को बिखरने से रोकता है और प्रेम को इच्छित वस्तु से उठाकर जीवन का केंद्र बना देता है। इस अर्थ में अक्का के यहाँ प्रेम की तीन अवस्थाएँ हैं:

प्रेम इच्छा है—भक्त परम को चाहता है।

प्रेम स्मृति है—भक्त अनुपस्थिति में भी प्रिय को नहीं भूलता।

प्रेम रूपांतरण है—भक्त स्वयं बदल जाता है।

यहाँ Karen Pechilis की devotional subjectivity की अवधारणा विशेष उपयोगी होती है। भक्त का ‘मैं’ केवल अपने दुख का बयान नहीं करता; वह अपने अनुभव के माध्यम से भक्ति की एक authoritative voice निर्मित करता है।¹² अक्का का ‘मैं’ इसी अर्थ में महत्वपूर्ण है—वह अपनी साधना की स्वयं साक्षी और व्याख्याकार हैं। उनका प्रेम अंततः व्यक्तिगत से सार्वभौमिक की ओर जाने का माध्यम है। चन्नमल्लिकार्जुन पहले प्रियतम हैं; धीरे-धीरे वही परम सर्वव्यापक सत्ता बन जाते हैं। इस प्रकार अक्का की माधुर्य-भक्ति दार्शनिक रूप से व्यक्तिगत संबंध से परम एकत्व की ओर जाने वाली यात्रा है।

वैराग्य, देह-अतिक्रमण और अंतःपूजा : बाह्य से आन्तरिकता की ओर

अक्का महादेवी के जीवन और भक्ति-दर्शन का तीसरा बड़ा आयाम वैराग्य है। लेकिन उनके वैराग्य को संसार के पूर्ण नकार के रूप में देखना उनके चिंतन की सूक्ष्मता को कम कर देता है। उनके वचन में भूख, प्यास और आश्रय की आवश्यकताओं को स्वीकार किया गया है। त्याग का अर्थ शरीर की आवश्यकताओं का इनकार नहीं है। बल्कि प्रश्न यह है कि इन आवश्यकताओं को जीवन का अंतिम अर्थ क्यों मान लिया जाए? अक्का की वैराग्य-दृष्टि को इस सूत्र में रखा जा सकता है—

आवश्यकता स्वीकार करो; आसक्ति से सावधान रहो। संसार में भोजन चाहिए—पर भोजन आत्मा की अंतिम आवश्यकता नहीं। आश्रय चाहिए—पर आश्रय मुक्ति नहीं। देह चाहिए—पर देह

अंतिम पहचान नहीं। यहीं से वैराग्य 'संसार-विरोध' से हटकर विवेक बन जाता है। उनके वचन 17 में रेशम के कीड़े का रूपक आता है-

“रेशम का कीड़ा अपने ही धागों में
अपने घर को बुनता है
और उन्हीं धागों में बँधकर मर जाता है”¹³

यह रूपक अक्का के जीवन-दर्शन की अत्यंत सूक्ष्म व्याख्या करता है। मनुष्य स्वयं ही अपनी आसक्तियों के धागे बुनता है—धन, यश, इच्छा, संबंध, अहंकार, प्रतिष्ठा—और अंततः उसी में बँध जाता है। वैराग्य उस धागे को काटने की प्रक्रिया है। यहाँ देह का प्रश्न भी जुड़ जाता है। अक्का का प्रसिद्ध वचन 124 कहता है-

“धन को तुम छीन सकते हो;
पर क्या देह की महिमा भी छीन सकते हो?
वस्त्रों की परतें उतार सकते हो;
पर उस शून्यता और नग्नता को कैसे उतारोगे
जो सभी आवरणों के पार है?”¹⁴

(रामानुजन के 1973 संस्करण में इस वचन का अंतिम भाग p. 129 पर है।¹⁵)

इस वचन को केवल नग्नता के प्रसंग में पढ़ना पर्याप्त नहीं है। यहाँ 'नग्नता' आवरणहीन अस्तित्व का रूपक बन जाती है। मनुष्य की पहचान अनेक आवरणों से बनी होती है—

अक्का का आध्यात्मिक प्रश्न है—इन सबके नीचे वह क्या है जो इनसे पहले और इनके बाद भी रहता है?

इसलिए उनके यहाँ देह का निषेध नहीं, देह की अंतिमता का निषेध है। इसी के साथ बाहरी पूजा के स्थान पर अंतःपूजा का प्रश्न आता है। अक्का की वचन-परंपरा में धार्मिक गुणों को बाहरी अनुष्ठानों से अधिक महत्त्व दिया जाता है। वीरशैव वचन व्यापक रूप से बाहरी कर्मकांड की आलोचना करते हैं और ईश्वर के साथ

प्रत्यक्ष, निजी संबंध पर जोर देते हैं।¹⁶ इस आध्यात्मिक दिशा को अक्का की प्रकृति-संबंधी वाणी और आंतरिक साधना की भाषा में देखा जा सकता है। वचन 131 में वह कहती है:

“सूर्य का प्रकाश,
आकाश, हवा की गति,
पत्ते, फूल, वृक्ष और लताओं के रंग—
यह सब दिन की पूजा है;
चंद्रमा, तारे, अग्नि और बिजली—

यह सब रात की पूजा है।”¹⁷

यहाँ पूजा मंदिर की सीमा से निकलकर समूचे जगत में फैल जाती है। यदि पूरा आकाश पूजा है, तो मंदिर पूजा का एकमात्र स्थान नहीं। यदि शांति, संयम और क्षमा साधना हैं, तो बाहरी अनुष्ठान आध्यात्मिकता की पूर्ण परिभाषा नहीं। यहीं अक्का की भक्ति भारतीय ज्ञान-परंपरा में अंतरीकरण (interiorization) की प्रक्रिया का उदाहरण बनती है—बाहरी प्रतीक धीरे-धीरे आंतरिक अवस्था में बदल जाते हैं।

आत्म-विलय, सर्वात्मदृष्टि और मुक्ति : 'मैं' से 'परम' तक

अक्का महादेवी की भक्ति का अंतिम और सबसे गहरा आयाम है—आत्म-विलयालेकिन आत्म-विलय का अर्थ स्वयं का विनाश नहीं है। इसका अर्थ उस सीमित 'मैं' का विसर्जन है जो स्वयं को परम से पृथक् मानता है। उनके वचन 50 में ईश्वर के अंतःस्थित होने का बोध पहले ही मिल चुका है। इससे आगे उनकी कविता ईश्वर को समस्त जगत में देखती है। प्रकृति, प्राणी और प्रकाश—सब एक ही व्यापक सत्ता के संकेत बन जाते हैं। यहाँ व्यक्तिगत भक्ति धीरे-धीरे सार्वभौमिक दृष्टि में बदल जाती है। अक्का का चन्नमल्लिकार्जुन अब केवल उनका प्रियतम नहीं; वह वह सत्ता है जिसमें जगत की विविधता अर्थ ग्रहण करती है। यही कारण है कि उनकी भक्ति को केवल सगुण या निर्गुण की कठोर श्रेणी में रखना कठिन है। व्यक्तिगत देवता उनके अनुभव का केंद्र हैं, लेकिन वही देवता सर्वव्यापक परम सत्ता का रूप धारण करते

हैं। अक्का के जीवन-दर्शन में इस रूपांतरण का अंतिम पड़ाव मुक्ति है। मुक्ति का अर्थ यहाँ कहीं जाना नहीं; दृष्टि बदलना है। अज्ञान से ज्ञान की ओर। आसक्ति से वैराग्य की ओर। विरह से अनुभूति की ओर। विभिन्नता के अहंकार से सर्वात्मदृष्टि की ओर। समर्पण इसी परिवर्तन का अंतिम रूप है।

उनके प्रसिद्ध वचन 283 में वह कहती हैं-

“मैं उस सुंदर को प्रेम करती हूँ
जिसकी मृत्यु नहीं, क्षय नहीं,
न रूप, न सीमा, न आरंभ, न अंत।
वही मेरा पति है।
उन पतियों को ले जाओ
जो मरते हैं और क्षय होते हैं।”¹⁸

(रामानुजन के 1973 संस्करण में यह वचन p. 134 पर आता है।¹⁹) यहाँ ‘पति’ शब्द को केवल सामाजिक विवाह के संदर्भ में पढ़ना पर्याप्त नहीं है। यह नश्वर और नित्य के बीच दार्शनिक विभाजन है। लौकिक संबंध क्षयशील हैं; परम संबंध अक्षय। देह नश्वर है; परम सत्ता अनश्वर। रूप बदलता है; सत्य बना रहता है। इस प्रकार अक्का का समर्पण किसी सांसारिक संबंध का नकार मात्र नहीं, बल्कि नित्य की ओर आत्मिक चयन है। यहीं आत्म-विलय का सही अर्थ स्पष्ट होता है। भक्त पहले कहता है—“मैं तुम्हारी हूँ” फिर अनुभव कहता है—“तुम मेरे भीतर हो,” और अंततः यह दूरी भी क्षीण होने लगती है। यह आत्म-विलोपन नहीं; आत्म-परिचय की पूर्णता है।

अक्का महादेवी की भक्ति में काल, प्रकृति और जीवन का समग्र दर्शन

अक्का की साधना केवल ईश्वर और आत्मा के संबंध तक सीमित नहीं है। उसमें समय, प्रकृति, शरीर और जीवन की क्षणभंगुरता का गहरा बोध भी है। वचन संख्या 119 में वो कहती हैं -

“जो कल होना है, आज हो जाए;
जो आज होना है, अभी हो जाए;
हे उजले प्रभु,

मुझे तुम्हारे ‘अब’ और ‘तब’ मत दो।”²⁰

यहाँ ‘अब’ की मांग आध्यात्मिक तात्कालिकता का संकेत है। मुक्ति भविष्य की कोई काल्पनिक घटना नहीं। सत्य का अनुभव अभी होना चाहिए। अक्का की भक्ति इसलिए *present-centered spirituality* भी है। इसका अर्थ आधुनिक *mindfulness* के साथ सीधा समानार्थक संबंध स्थापित करना नहीं है; वह ऐतिहासिक रूप से अनुचित होगा। लेकिन यह अवश्य कहा जा सकता है कि अक्का का चिंतन वर्तमान क्षण को आध्यात्मिक रूप से सक्रिय क्षण मानता है। इसी प्रकार प्रकृति के प्रति उनका दृष्टिकोण भी निष्क्रिय नहीं है। जब आकाश, पवन, वृक्ष, फूल, चंद्रमा और अग्नि पूजा में बदल जाते हैं, तब जगत केवल उपभोग की वस्तु नहीं रह जाता। वह पवित्र उपस्थिति का क्षेत्र बन जाता है। यह दृष्टि आधुनिक पर्यावरणीय नैतिकता के साथ संवाद कर सकती है, यद्यपि अक्का को आधुनिक *environmental thinker* कहना उचित नहीं होगा। उनके चिंतन का मूल यही है— जिसमें परम दिखाई दे, उसका मात्र उपभोग कैसे किया जा सकता है?

सैद्धांतिक निष्कर्ष : अक्का की भक्ति में ‘subject’ का निर्माण

Karen Pechilis की *devotional subjectivity* की अवधारणा के संदर्भ में अक्का महादेवी को पढ़ने पर एक महत्वपूर्ण परिणाम सामने आता है।²¹ भक्ति में ‘subject’ कोई पहले से तैयार व्यक्ति नहीं है जो केवल अपनी भावनाएँ ईश्वर को बता रहा हो। स्वयं भक्ति की प्रक्रिया उस subject को निर्मित करती है।

अक्का का ‘मैं’—भूखे रहता है, विरह में होता है, प्रेम करता है, संसार से विरक्त होता है, अपने शरीर को नए अर्थ में देखता है, अपने ईश्वर को पुकारता है, और अंततः स्वयं को उसी परम सत्ता में अंतर्लीन हो जाता है। अर्थात् अक्का महादेवी के ‘मैं’ के यहाँ भक्ति *subject formation* की प्रक्रिया बन जाती है, इसलिए अक्का के वचनों में बार-बार आने वाला ‘मैं’ केवल आत्मकथात्मक ‘मैं’ नहीं है। वह साधना से निर्मित ‘मैं’ है। यह

‘मैं’ सामाजिक पहचान से शुरू होता है, लेकिन वहीं समाप्त नहीं होता। वह आध्यात्मिक पहचान में परिवर्तित होता है। यही अक्का की काव्यात्मकता का सबसे गहरा पक्ष है।

निष्कर्ष

अक्का महादेवी की भक्ति-दृष्टि को समझने के लिए उन्हें किसी एक संप्रदाय, किसी एक धार्मिक अवधारणा अथवा किसी एक आधुनिक वैचारिक श्रेणी में सीमित करना संभव नहीं है। उनके वचन जिस आध्यात्मिक संसार का निर्माण करते हैं, उसमें भक्ति कोई बाहरी धार्मिक कर्म नहीं, बल्कि अस्तित्व के अर्थ की खोज है। उनके लिए ईश्वर की खोज और स्वयं की खोज दो अलग प्रक्रियाएँ नहीं हैं। जिस क्षण साधक यह पहचानना प्रारंभ करता है कि परम सत्ता किसी दूरस्थ, बाहरी लोक में स्थित नहीं, बल्कि उसके अपने अस्तित्व की गहराई में निहित है, उसी क्षण भक्ति आत्मबोध की प्रक्रिया में रूपांतरित होने लगती है, इसीलिए अक्का के यहाँ भक्ति और ज्ञान परस्पर विरोधी मार्ग नहीं हैं; अनुभव से उत्पन्न ज्ञान ही भक्ति को उसकी वास्तविक दिशा देता है और भक्ति उस ज्ञान को जीवित अनुभव में बदलती है। यह अनुभव की वही केंद्रीयता है जिसे वचन-परंपरा में धार्मिक सत्य की प्रत्यक्ष अनुभूति के रूप में देखा गया है।¹

अक्का के आध्यात्मिक चिंतन की मौलिकता इस बात में भी है कि वे परम सत्य को केवल निर्गुण दार्शनिक अवधारणा के रूप में ग्रहण नहीं करतीं। उनका चन्नमल्लिकार्जुन एक साथ प्रियतम, पति, आराध्य और सर्वव्यापक सत्ता है। यहाँ भक्ति का भावात्मक पक्ष और उसका दार्शनिक पक्ष एक-दूसरे को पुष्ट करते हैं। प्रियतम के रूप में ईश्वर की अनुभूति भक्त को उस सत्ता के निकट लाती है, जबकि सर्वव्यापकता का बोध उस निजी संबंध को सार्वभौमिकता प्रदान करता है। इस प्रकार अक्का की माधुर्य-भक्ति केवल भाव-विलास नहीं रह जाती; वह एक ऐसी ज्ञान-यात्रा बन जाती है जिसमें व्यक्तिगत प्रेम धीरे-धीरे उस सत्य की ओर ले जाता है, जो व्यक्ति और जगत दोनों को व्याप्त करता है। उनके लिए प्रेम किसी वस्तु की प्राप्ति की इच्छा मात्र नहीं, बल्कि स्वयं के भीतर एक नए आध्यात्मिक केंद्र के निर्माण की प्रक्रिया है। इसी कारण विरह भी उनके काव्य में केवल दुःख नहीं है। विरह उस उपस्थिति को

अधिक तीव्रता से अनुभव करने की स्थिति है जो अभी पूर्णतः आत्मसात नहीं हुई है। प्रेम जहाँ संबंध निर्मित करता है, वहीं विरह उस संबंध को तपाता है और साधना में रूपांतरित कर देता है।

इसी बिंदु पर अक्का का वैराग्य भी अपने वास्तविक अर्थ में सामने आता है। उनके लिए वैराग्य संसार से घृणा नहीं है और न ही वह जीवन के भौतिक आयामों का यांत्रिक निषेध है। वे भूख, प्यास, आश्रय और शरीर की आवश्यकताओं को अस्वीकार नहीं करतीं; वे केवल यह स्पष्ट करती हैं कि इन आवश्यकताओं की पूर्ति को जीवन की अंतिम उपलब्धि नहीं माना जा सकता। उनकी दृष्टि में समस्या संसार नहीं, संसार के प्रति आसक्ति है। इस अर्थ में उनका वैराग्य एक प्रकार का आध्यात्मिक विवेक है—ऐसा विवेक जो नश्वर और नित्य, आवश्यक और अंतिम, साधन और साध्य के बीच अंतर करना सिखाता है। आज के अत्यधिक उपभोगवादी संदर्भ में अक्का का यह चिंतन विशेष अर्थ ग्रहण करता है, क्योंकि वह मनुष्य को यह प्रश्न पूछने के लिए विवश करता है कि क्या बाहरी संचय वास्तव में आंतरिक पूर्णता का पर्याय हो सकता है। अक्का की साधना का उत्तर स्पष्ट है—भौतिक वस्तुएँ जीवन को सहारा दे सकती हैं, पर वे जीवन के अंतिम अर्थ को निर्धारित नहीं कर सकतीं।

उनके वैराग्य का अगला चरण देह के प्रश्न से जुड़ता है। अक्का की देह-संबंधी भाषा को केवल नग्नता या सामाजिक विद्रोह के संदर्भ में पढ़ना उनके आध्यात्मिक चिंतन को अत्यंत सीमित कर देता है। उनकी दृष्टि में देह न तो पूर्णतः अस्वीकार्य है और न ही मनुष्य की अंतिम पहचान। देह अनुभव का माध्यम है, लेकिन सत्य का अंतिम रूप नहीं। इसी कारण उनके वचनों में ‘आवरण’ और ‘अनावृत्तता’ के रूपक का गहरा महत्व है। वस्त्र, आभूषण, सामाजिक प्रतिष्ठा, संबंध और अन्य पहचानें मनुष्य को एक निश्चित सामाजिक रूप प्रदान करती हैं; किंतु आध्यात्मिक साधना उस मूल अस्तित्व की खोज करती है, जो इन सभी आवरणों के पीछे है। इस प्रकार अक्का का देह-अतिक्रमण वास्तव में देह का निषेध नहीं, बल्कि देह की अंतिमता का निषेध है। यह अंतर अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसी से उनकी भक्ति एक व्यापक अस्तित्व-दर्शन में बदलती है।

अक्का की साधना में बाहरी पूजा का अंतरीकरण भी इसी प्रक्रिया का हिस्सा है। जब शांति, धैर्य, क्षमा और आत्म-संयम स्वयं पूजा के तत्त्व बन जाते हैं, तब धर्म अनुष्ठान से नैतिक और आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश करता है। जब सूर्य, आकाश, वृक्ष, फूल, चंद्रमा और अग्नि स्वयं पूजा का रूप धारण कर लेते हैं, तब मंदिर की सीमाएँ विस्तार पाकर समूचे जगत तक पहुँच जाती हैं। यहाँ अक्का की भक्ति किसी संस्थागत धार्मिकता के विरुद्ध खड़ी होकर स्वयं को समाप्त नहीं करती; वह धार्मिकता को अधिक गहरे आंतरिक अर्थ में पुनर्स्थापित करती है। पूजा बाहर से भीतर आती है, और भीतर से फिर समूचे जगत में फैल जाती है। इस अर्थ में अक्का की भक्ति का अंतिम विस्तार एक ऐसी दृष्टि में होता है जिसमें संसार ईश्वर से पृथक नहीं रहता।

अक्का महादेवी के वचनों की सबसे गहन उपलब्धि शायद इसी बिंदु पर दिखाई देती है कि उनकी 'मैं' अंततः केवल आत्म-अभिव्यक्ति की 'मैं' नहीं रहती। प्रारंभिक स्तर पर यह 'मैं' प्रेम करती है, दुखती है, खोजती है, प्रश्न करती है और विरह में तपती है। लेकिन साधना के क्रम में यही 'मैं' अपनी सीमाओं को पहचानती है। वह देखती है कि उसकी वास्तविक पहचान उन बाहरी रूपों से अधिक गहरी है जिनके माध्यम से समाज उसे परिभाषित करता है। इस प्रकार उनकी भक्ति में *subjectivity* का निर्माण और उसका अतिक्रमण दोनों एक साथ घटित होते हैं। Karen Pechilis की *devotional subjectivity* की अवधारणा यहाँ विशेष रूप से उपयोगी हो जाती है: भक्त का 'मैं' पहले अपनी आवाज़ प्राप्त करता है और फिर उसी आवाज़ के माध्यम से अपनी सीमितता का बोध करता है।² अक्का की आध्यात्मिक यात्रा इसलिए आत्म-विलोपन की यात्रा नहीं है; यह उस मिथ्या पृथकता के विघटन की यात्रा है जो मनुष्य को स्वयं, जगत और परम के बीच कृत्रिम विभाजन में रखती है।

यही कारण है कि अक्का के यहाँ समर्पण को पराधीनता के रूप में पढ़ना उचित नहीं होगा। समर्पण उनके लिए उस स्थिति का नाम है जहाँ साधक अपने सीमित अहं को अंतिम सत्य मानना छोड़ देता है। पहले वह कहती है कि वह चन्नमल्लिकार्जुन की है; फिर उसके वचनों में वही चन्नमल्लिकार्जुन उसके भीतर और समूचे

जगत में उपस्थित दिखाई देते हैं। व्यक्तिगत ईश्वर और सार्वभौमिक सत्ता के बीच यह गतिशील संबंध अक्का की भक्ति-दृष्टि की सबसे बड़ी दार्शनिक विशेषताओं में से है। यहाँ समर्पण और स्वतंत्रता विरोधी नहीं हैं। बाहरी स्वामित्व से मुक्त होकर किसी परम सत्ता के प्रति स्वयं को अर्पित करना उनके लिए आत्मिक पराधीनता नहीं, बल्कि उस गहरे बंधन से मुक्ति है जिसे अहंकार स्वयं निर्मित करता है।

इस प्रकार अक्का महादेवी की भक्ति को यदि एक समग्र आध्यात्मिक प्रक्रिया के रूप में देखा जाए तो उसका मार्ग अनुभव से आत्मबोध, आत्मबोध से प्रेम, प्रेम से विरह, विरह से वैराग्य, वैराग्य से अंतःपूजा और अंतःपूजा से आत्म-विलय की ओर जाता दिखाई देता है। यह यात्रा किसी स्थिर सिद्धांत की स्थापना नहीं करती; वह एक जीवित अनुभव की क्रमिक गहनता को व्यक्त करती है। यही कारण है कि अक्का का काव्य केवल धार्मिक साहित्य नहीं रह जाता। वह मनुष्य के अस्तित्व, उसकी इच्छाओं, उसकी सीमाओं, उसके आत्मबोध और उसके अंतिम अर्थ पर एक निरंतर प्रश्न है।

भारतीय ज्ञान-परंपरा के संदर्भ में अक्का महादेवी का महत्त्व इसी कारण और बढ़ जाता है। वे ज्ञान को केवल बौद्धिक अनुशीलन नहीं मानतीं; उनके लिए ज्ञान का मूल्य तभी है जब वह जीवन को रूपांतरित करे। भक्ति तभी सार्थक है जब वह मनुष्य की दृष्टि बदल दे; वैराग्य तभी सार्थक है जब वह आसक्ति के स्थान पर विवेक स्थापित करे; प्रेम तभी सार्थक है जब वह आत्मकेंद्रित इच्छा से उठकर आत्म-परिवर्तन का माध्यम बने। इसीलिए उनका दर्शन किसी एक मत का बंद तंत्र नहीं, बल्कि जीवन को साधना में रूपांतरित करने की प्रक्रिया है।

यहीं उनकी प्रासंगिकता आज के समय से भी जुड़ती है। वर्तमान मनुष्य के सामने संकट केवल बाहरी अभाव का नहीं, बल्कि अर्थ, संबंध, पहचान और आंतरिक संतुलन का भी है। उपलब्धियों के बावजूद असंतोष, संपर्क के बावजूद अकेलापन और सूचना के बावजूद आत्मबोध का अभाव आधुनिक जीवन की वास्तविक चुनौतियों में हैं। अक्का महादेवी का जीवन इस संदर्भ में किसी सरल 'आध्यात्मिक समाधान' की पेशकश नहीं करता; वह उससे

अधिक गहरा प्रश्न उठाता है—मनुष्य अपने जीवन का वास्तविक केंद्र कहाँ स्थापित करता है? यदि उसका केंद्र बाहरी संचय में है, तो उसकी आत्म-शांति बाहरी परिस्थितियों पर निर्भर रहेगी; यदि उसका केंद्र अंतःस्थित सत्य में है, तो संसार के साथ उसका संबंध बदल सकता है।

अतः अक्का महादेवी की प्रासंगिकता किसी अतीत की संत परंपरा को वर्तमान पर आरोपित करने में नहीं, बल्कि उस प्रश्न को पुनर्जीवित करने में है जो उनके समूचे जीवन और वचनों के भीतर ध्वनित होता है—मनुष्य अपने बाहरी आवरणों, इच्छाओं और सामाजिक पहचानों के पार स्वयं को किस रूप में पहचानता है? उनका उत्तर किसी एक दार्शनिक सूत्र में नहीं, बल्कि उनकी साधना की संपूर्ण दिशा में निहित है। परम सत्य बाहर से अर्जित नहीं किया जाता; उसे भीतर से पहचाना जाता है। प्रेम उसे निकट करता है, विरह उसकी खोज को तीव्र करता है, वैराग्य मनुष्य को आसक्ति से मुक्त करता है और अंततः समर्पण उस सीमा को पार करने का माध्यम बनता है जहाँ ‘मैं’ और ‘वह’ के बीच की दूरी अपनी अंतिम कठोरता खो देती है।

इस दृष्टि से अक्का महादेवी को केवल एक संत कवयित्री के रूप में नहीं, बल्कि भारतीय भक्ति परंपरा की अनुभव-आधारित ज्ञानमीमांसा और रूपांतरणकारी आध्यात्मिकता की एक महत्वपूर्ण चिंतक के रूप में पढ़ा जाना चाहिए। उनके वचन हमें यह सिखाते हैं कि भक्ति का अंतिम लक्ष्य केवल ईश्वर की स्तुति नहीं, बल्कि मनुष्य के अस्तित्व का रूपांतरण है। वह रूपांतरण तब पूर्ण होता है जब भक्ति बाहरी आचार से आंतरिक अनुभव, अनुभव से आत्मबोध और आत्मबोध से उस व्यापक चेतना की अनुभूति में बदल जाती है जिसमें जीवन अपने पृथक् अर्थ से आगे बढ़कर एक समग्र आध्यात्मिक अर्थ ग्रहण करता है। अक्का की दृष्टि में यही मुक्ति है—कहीं और पहुँच जाना नहीं, बल्कि जिस सत्य की खोज बाहर की दुनिया में की जा रही थी, उसे अपने भीतर और समूचे अस्तित्व में पहचान लेना।

फुटनोट्स

1. A. K. Ramanujan, ed. and trans., *Speaking*

of Siva (Harmondsworth: Penguin Books, 1973), 111–142. The Mahadeviyakka section begins at p. 111 and presents her as the only woman among the Virashaiva saints included in the volume. (CSE IIT Kanpur)

2. Karen Pechilis, “Revisiting the Experiential World of Women’s Bhakti Poetry,” *Religions* 14, no. 6 (2023): article 788, <https://doi.org/10.3390/rel14060788>. Pechilis explicitly proposes prioritizing poetry, subjectivity, voice, utterance, and experience in studying female bhakti saints. (MDPI)
3. Ramanujan, *Speaking of Siva*, 30–31. Ramanujan describes *anubhava* as “experience” and emphasizes the search for an “unmediated vision” in the Virashaiva vacanas. (CSE IIT Kanpur)
4. Ibid., 111–14. Ramanujan’s biographical formulation is deliberately cautious concerning the possibility of Mahadeviyakka’s marriage. (CSE IIT Kanpur)
5. Pechilis, “Revisiting the Experiential World of Women’s Bhakti Poetry,” article 788. (MDPI)
6. Ramanujan, *Speaking of Siva*, Mahadeviyakka 2. The Hindi passage above is a bhāvānuvāda, not a claim to reproduce the Kannada original. The online text preserves Ramanujan’s English translation of the verse. (CSE IIT Kanpur)
7. Ramanujan, *Speaking of Siva*, 115. An independent cross-reference identifies Mahadeviyakka 2 at p. 115; the online text also begins the Mahadeviyakka section with poem 2 immediately after the biographical note. (CSE IIT Kanpur)
8. Ramanujan, *Speaking of Siva*, Mahadeviyakka 50. The poem appears as “When I didn’t know myself / where were you? / Like the colour in the gold, / you

- were in me.” (CSE IIT Kanpur)
9. Ramanujan, *Speaking of Siva*, 30–31. (CSE IIT Kanpur)
 10. Ibid., 111–14. Ramanujan notes that Mahadeviyakka’s verse is distinctive in calling Siva her lover and spouse. (CSE IIT Kanpur)
 11. Ramanujan, *Speaking of Siva*, Mahadeviyakka 79. The online text gives the complete English translation; no edition-specific page number is asserted here because I did not find a sufficiently independent pagination check for this particular poem. (CSE IIT Kanpur)
 12. Pechilis, “Revisiting the Experiential World of Women’s Bhakti Poetry,” article 788. (MDPI)
 13. Ramanujan, *Speaking of Siva*, Mahadeviyakka 17. The silkworm image is preserved in the Ramanujan translation. (CSE IIT Kanpur)
 14. Ramanujan, *Speaking of Siva*, Mahadeviyakka 124. Hindi passage is a bhāvānuvāda of Ramanujan’s English translation. (CSE IIT Kanpur)
 15. Ramanujan, *Speaking of Siva*, 129. The text itself marks the ending of Mahadeviyakka 124 with p. 129. (CSE IIT Kanpur)
 16. Ramanujan, *Speaking of Siva*, 30–35. In his discussion of the Virashaiva movement, Ramanujan emphasizes its rejection of conventional ritual performance and its insistence on a direct, intimate relationship with God. (CSE IIT Kanpur)
 17. Ramanujan, *Speaking of Siva*, Mahadeviyakka 131. The poem identifies sunlight, sky, wind, leaves, flowers, moon, stars, fire, and lightning as forms of day and night worship. (CSE IIT Kanpur)
 18. Ramanujan, *Speaking of Siva*, Mahadeviyakka 283. Hindi passage is a bhāvānuvāda. (CSE IIT Kanpur)
 19. Ramanujan, *Speaking of Siva*, 134. The poem is independently cross-referenced as Mahadeviyakka 283, p. 134. (Ann Skea)
 20. Ramanujan, *Speaking of Siva*, Mahadeviyakka 119. The poem is preserved in the online text; no unverified page number is supplied here. (CSE IIT Kanpur)
 21. Pechilis, “Revisiting the Experiential World of Women’s Bhakti Poetry,” article 788. Pechilis’ argument concerning devotional subjectivity as an authoritative nexus for the articulation of individual and communal devotion is central to this theoretical reading. (MDPI)

संदर्भ-सूची / Bibliography

Chaitanya, Vinaya, trans. *Songs for Śiva: Vacanas of Akka Mahadevi*. Lanham, MD: AltaMira Press, 2005.

Pechilis, Karen. “Revisiting the Experiential World of Women’s Bhakti Poetry.” *Religions* 14, no. 6 (2023): article 788. <https://doi.org/10.3390/rel14060788>. (MDPI)

Ramanujan, A. K., ed. and trans. *Speaking of Siva*. Harmondsworth: Penguin Books, 1973. The edition is catalogued as a 199-page Penguin Classics volume, with the Mahadeviyakka section beginning at p. 111. (CSE IIT Kanpur)

Ramaswamy, Vijaya. *Divinity and Deviance: Women in Virasaivism*. New Delhi: Oxford University Press, 1996.

Ramaswamy, Vijaya. *Walking Naked: Women, Society, Spirituality in South India*. Shimla: Indian Institute of Advanced Study, 1997.

Tyagi, Alka. *Andal and Akka Mahadevi: Feminity to Divinity*. New Delhi: D. K. Printworld, 2014.